[2018] 4 उम. नि. प. 333

किशन राव

बनाम

शंकरगौड़ा

2 जुलाई, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 और 139 – अपर्याप्त निधियों के कारण चैक का अनादरण – चैक के धारक के पक्ष में उपधारणा – यदि अभियुक्त इस उपधारणा का खंडन करने के लिए कि उसने वह चैक किसी ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी किया था, कोई साक्ष्य पेश नहीं करता है तो उसे दोषसिद्ध किया जा सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उसे इस आधार पर दोषमुक्त करना अनुचित होगा कि वह न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के बारे में संदेह पैदा करने में सफल हुआ था ।

प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी (परिवादी) और प्रत्यर्थी (अभियुक्त) एक दूसरे से परिचित थे और उनके बीच अच्छे संबंध थे । अभियुक्त ने अपने कारबार संबंधी व्ययों के प्रयोजनार्थ परिवादी से 2,00,000/- रुपए उधार देने का अनुरोध किया और उसे एक मास के भीतर वापस लौटाने का वचन दिया । परिवादी ने तारीख 25 दिसम्बर, 2005 को उसे उधार के रूप में 2,00,000/- रुपए की रकम का संदाय कर दिया । अभियुक्त ने उधार के प्रतिदाय के लिए परिवादी के नाम में 2,00,000/- रुपए की रकम के लिए तारीख 25 जनवरी, 2006 का एक उत्तर-दिनांकित चैक जारी किया । वह चैक बैंक में संग्रहण के लिए प्रस्तुत किया गया था जिसका अपर्याप्त निधियों के कारण नकदीकरण नहीं किया जा सका था । अभियुक्त के अनुरोध पर वह चैक पुनः तारीख 1 मार्च, 2006 को संग्रहण के लिए प्रस्तुत किया गया था जो कि बैंक द्वारा तारीख 2 मार्च, 2006 को "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन सहित लौटा दिया गया था । परिवादी द्वारा 2,00,000/- रुपए के संदाय की मांग करते हुए एक सूचना जारी की गई थी जो कि अभियुक्त द्वारा तारीख 14 मार्च, 2006 को प्राप्त की गई थी जिसके संबंध में तारीख 31 मार्च, 2006 को उत्तर भेजा गया था । अपीलार्थी द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन

अपराध कारित करने का अभिकथन करते हुए एक परिवाद फाइल किया गया था । मजिस्ट्रेट द्वारा उसका संज्ञान लिया गया । अभियुक्त ने अपराध का दोषी न होने का कथन किया, इसलिए, विचारण की कार्यवाही प्रारंभ की गई । परिवादी ने दोष को साबित करने की दृष्टि से स्वयं अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की और दो अन्य साक्षियों, अभि.सा. 2 और अभि. सा. 3 की परीक्षा की । उसने दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श पी 1 और पी 6 फाइल किए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का कथन लेखबद्ध किया गया था । इसके पश्चात्, मामले के संबंध में प्रतिरक्षा-पक्ष के साक्ष्य के लिए कार्यवाही प्रारंभ की गई । अभियुक्त ने न तो स्वयं अपनी परीक्षा की और न ही कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया । उस सूचना के उत्तर में, जो कि परिवादी द्वारा भेजी गई थी, यह अभिकथित किया गया था कि उक्त चैक को परिवादी द्वारा चुराया गया था । परिवादी की प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा की गई थी । प्रतिरक्षा-पक्ष ने प्रतिपरीक्षा में चैक पर अभियुक्त के हस्ताक्षर होने से इनकार किया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त की इस प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया कि चैक को परिवादी द्वारा चुराया गया था । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध 1881 के अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा की । अभियुक्त अपनी ओर से कोई साक्ष्य पेश करके इस उपधारणा का खंडन करने में असफल रहा । विचारण न्यायालय ने, अपराध साबित हो जाने पर अभियुक्त को 1881 के अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे 2,50,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और छह मास के साधारण कारावास के लिए दंडादिष्ट किया । अभियुक्त द्वारा उक्त निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल की गई थी । अपील न्यायालय ने पक्षकारों के निवेदनों पर विचार किया और दोषसिद्धि के आदेश को अभिपुष्ट करते हुए अपील खारिज कर दी । अभियुक्त द्वारा उच्च न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण फाइल किया गया था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा दोषसिद्धि संबंधी आदेश को अपास्त करते हुए पुनरीक्षण मंजूर कर लिया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह पैदा करने में सफल हुआ है । परिवादी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय ने ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि का आदेश किसी अनुचितता से ग्रस्त है या किसी सामग्री पर आधारित नहीं है या पुनरीक्षण

अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अन्य कोई विधिमान्य आधार है । उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करने का कोई विधिमान्य आधार नहीं है कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह उत्पन्न करने में सफल हुआ है । अपीलार्थी ने चैक का जारी किया जाना साबित कर दिया है, जिस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर हैं और चैक प्रस्तुत करने पर चैक "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन सहित लौटा दिया गया था । बैंक के कर्मचारी को एक साक्षी के रूप में पेश किया गया था, जिसने यह साबित कर दिया था कि चैक इस आधार पर नहीं लौटाया गया था कि उस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर नहीं थे बल्कि वह अपर्याप्त निधियों के कारण लौटाया गया था । उच्च न्यायालय का निर्णय एकमात्र इस आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है । हालांकि उच्च न्यायालय का निर्णय इस आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है कि उच्च न्यायालय ने अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता से परे कार्य किया है फिर भी मामले के गुणागुण के संबंध में अपना समाधान करने के लिए इस बात की परीक्षा की गई कि अभियुक्त के ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में कोई संदेह था अथवा नहीं । (पैरा 15 और 16)

प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय तथा अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि चैक पर अभियुक्त के हस्ताक्षर थे और यह बैंक में प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थी को दिया गया था और धारा 139 के अधीन उपधारणा ठीक ही की गई थी, जिसका खंडन अभियुक्त द्वारा नहीं किया गया था । अभियुक्त ने उपर्युक्त उपधारणा का खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया था । अभियुक्त अपने पक्षकथन का समर्थन करने के लिए साक्षी के कठघरे में भी नहीं आया था । उस सूचना के उत्तर में, जो कि अपीलार्थी द्वारा दी गई थी, अभियुक्त ने यह प्रतिरक्षा ली कि चैक को अपीलार्थी द्वारा चुराया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उक्त प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया गया था, जिसके संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा भी कोई प्रतिकूल दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है । (पैरा 20)

अभियुक्त द्वारा कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था । चूंकि सूचना के उत्तर में ली गई इस प्रतिरक्षा को कि चैक को चुराया गया था, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अस्वीकार किया गया है इसलिए हमें उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई आधार प्रतीत नहीं होता है कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह का सृजन करने में सफल हुआ है । उच्च न्यायालय द्वारा

यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि धारा 139 के अधीन की गई उपधारणा का स्वयं अभि. सा. 1 के साक्ष्य के आधार पर कैसे खंडन किया जा सकता है । उपर्युक्त विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने में त्रुटि कारित की है । उच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में, दोषसिद्धि को अपास्त करने के लिए अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने में समर्थ बनाने के लिए किसी पर्याप्त आधार का उल्लेख नहीं किया है । (पैरा 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] (2015) 3 एस. सी. सी. 123 :
संजयसिंह रामराव चव्हाण बनाम **दत्तात्रे गुलाबराव फाल्के और अन्य** ; 12

[2010] (2010) 11 एस. सी. सी. 441 :
रंगप्पा बनाम **श्री मोहन** ; 21

[2009] (2009) 2 एस. सी. सी. 513 :
कुमार एस्काट्र्स बनाम **शर्मा कार्पेट्स** ; 18

[1999] (1999) 2 एस. सी. सी. 452 :
केरल राज्य बनाम **पुत्तुमना इल्लथ जथवेदन नम्बूदिरी** । 11

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2018 की दांडिक अपील सं. 803.

2010 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 2605 में कर्नाटक उच्च न्यायालय की कालबुरगी न्यायपीठ के तारीख 18 मार्च, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री प्रीतम शाह, (सुश्री) रोज़ी शर्मा और एम. ए. कृष्णमूर्ति

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण – यह अपील उच्च न्यायालय के तारीख 18 मार्च, 2016 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1881 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 138 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध

अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश को अपास्त करते हुए प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा फाइल की गई दांडिक पुनरीक्षण याचिका मंजूर कर ली गई थी । पक्षकारों को इसमें इसके पश्चात् उस रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा जैसे कि वे मजिस्ट्रेट के न्यायालय में वर्णित हैं ।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्न प्रकार हैं :–

अपीलार्थी (परिवादी) और प्रत्यर्थी (अभियुक्त) एक दूसरे से परिचित थे और उनके बीच अच्छे संबंध थे । अभियुक्त ने अपने कारबार संबंधी व्ययों के प्रयोजनार्थ परिवादी से 2,00,000/- रुपए उधार देने का अनुरोध किया और उसे एक मास के भीतर वापस लौटाने का वचन दिया । परिवादी ने तारीख 25 दिसम्बर, 2005 को उसे उधार के रूप में 2,00,000/- रुपए की रकम का संदाय कर दिया । अभियुक्त ने उधार के प्रतिदाय के लिए परिवादी के नाम में 2,00,000/- रुपए की रकम के लिए तारीख 25 जनवरी, 2006 का एक उत्तर-दिनांकित चैक जारी किया । वह चैक बैंक आफ महाराष्ट्र की गुलबर्गा शाखा में संग्रहण के लिए प्रस्तुत किया गया था जिसका अपर्याप्त निधियों के कारण नकदीकरण नहीं किया जा सका था । अभियुक्त के अनुरोध पर वह चैक पुनः तारीख 1 मार्च, 2006 को संग्रहण के लिए प्रस्तुत किया गया था जो कि बैंक द्वारा तारीख 2 मार्च, 2006 को "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन सहित लौटा दिया गया था ।

3. परिवादी द्वारा 2,00,000/- रुपए के संदाय की मांग करते हुए एक सूचना जारी की गई थी जो कि अभियुक्त द्वारा तारीख 14 मार्च, 2006 को प्राप्त की गई थी जिसके संबंध में तारीख 31 मार्च, 2006 को उत्तर भेजा गया था । अपीलार्थी द्वारा 1881 के अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध कारित करने का अभिकथन करते हुए एक परिवाद फाइल किया गया था । मजिस्ट्रेट द्वारा उसका संज्ञान लिया गया । अभियुक्त ने अपराध का दोषी न होने का कथन किया, इसलिए, विचारण की कार्यवाही प्रारंभ की गई । परिवादी ने दोष को साबित करने की दृष्टि से स्वयं अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की और दो अन्य साक्षियों, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 की परीक्षा की । उसने दस्तावेज़ी साक्ष्य प्रदर्श पी-1 और पी-6 फाइल किए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का कथन लेखबद्ध किया गया था । इसके पश्चात्, मामले के संबंध में प्रतिरक्षा-पक्ष के साक्ष्य के लिए कार्यवाही प्रारंभ की गई । अभियुक्त ने न तो स्वयं अपनी परीक्षा की और न ही कोई मौखिक या दस्तावेज़ी साक्ष्य प्रस्तुत किया । उस सूचना के उत्तर में, जो कि परिवादी द्वारा भेजी गई थी,

यह अभिकथित किया गया था कि उक्त चैक को परिवादी द्वारा चुराया गया था । परिवादी की प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा की गई थी । प्रतिरक्षा-पक्ष ने प्रतिपरीक्षा में चैक पर अभियुक्त के हस्ताक्षर होने से इनकार किया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त की इस प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया कि चैक को परिवादी द्वारा चुराया गया था । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध 1881 के अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा की । अभियुक्त अपनी ओर से कोई साक्ष्य पेश करके इस उपधारणा का खंडन करने में असफल रहा । विचारण न्यायालय ने, अपराध साबित हो जाने पर अभियुक्त को 1881 के अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे 2,50,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और छह मास के साधारण कारावास के लिए दंडादिष्ट किया ।

4. अभियुक्त द्वारा उक्त निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल की गई थी । अपील न्यायालय ने पक्षकारों के निवेदनों पर विचार किया और दोषसिद्धि के आदेश को अभिपुष्ट करते हुए अपील खारिज कर दी ।

5. अभियुक्त द्वारा उच्च न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण फाइल किया गया था । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा दोषसिद्धि संबंधी आदेश को अपास्त करते हुए पुनरीक्षण मंजूर कर लिया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह पैदा करने में सफल हुआ है । परिवादी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है ।

6. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी है कि चूंकि विचारण न्यायालय के समक्ष साक्ष्य पेश करने के पश्चात् अपराध साबित हो गया था इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की ओर से पेश किए गए मौखिक और दस्तावेज़ी दोनों साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् दोषसिद्धि लेखबद्ध की गई थी और वह आदेश अपील न्यायालय द्वारा भी अभिपुष्ट कर दिया गया था । उच्च न्यायालय के पास अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और यह निष्कर्ष निकालने की अधिकारिता नहीं थी कि अभियुक्त उसके ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह पैदा करने में समर्थ हुआ है । उसने यह निवेदन किया कि उच्च न्यायालय, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 379/401 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए दोषसिद्धि के आदेश में केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब निचले न्यायालयों द्वारा लेखबद्ध निष्कर्ष अनुचित हों और अभियुक्त के विरुद्ध अपराध साबित करने के लिए कोई

साक्ष्य न हो । यह दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् अपनी राय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है ।

7. यह निवेदन किया गया है कि धारा 139 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा करके ठीक किया गया था और अभियुक्त साक्ष्य पेश करके उक्त उपधारणा का खंडन करने में असफल रहा था । दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने का कोई आधार नहीं था ।

8. यद्यपि प्रत्यर्थी को सूचना की तामील की गई थी तथापि, सुनवाई के समय कोई भी उपस्थित नहीं हुआ ।

9. हमने अपीलार्थी के निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

10. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि वह चैक अभियुक्त द्वारा जारी किया गया था जिस पर उसके हस्ताक्षर थे । यद्यपि परिवादी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए मौखिक तथा दस्तावेज़ी साक्ष्य पेश किए थे तथापि, अभियुक्त द्वारा उसके ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में उपधारणा का खंडन नहीं किया गया था ।

11. इस न्यायालय ने समय-समय पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397/401 की व्याप्ति की और उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण संबंधी अधिकारिता का प्रयोग करने के आधार की परीक्षा की है । **केरल राज्य** बनाम **पुत्तुमना इल्लथ जथवेदन नम्बूदिरी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण संबंधी अधिकारिता की व्याप्ति पर विचार करते समय निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया है :–

> "5. .....उच्च न्यायालय, अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजनार्थ किसी भी कार्यवाही के अभिलेख की मांग कर सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है । दूसरे शब्दों में, यह अधिकारिता एक प्रकार की पर्यवेक्षी अधिकारिता है जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा न्यायहानि को ठीक करने के लिए किया जाता है । किन्तु उक्त पुनरीक्षण अधिकारिता की तुलना किसी अपील न्यायालय की शक्ति से नहीं की

[1] (1999) 2 एस. सी. सी. 452.

जा सकती है और न ही इसे द्वितीय अपीली अधिकारिता के रूप में भी माना जा सकता है । अतः, साधारणतया, उच्च न्यायालय के लिए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना और उसके संबंध में अपना कोई निष्कर्ष निकालना जब कि मजिस्ट्रेट तथा अपील में सेशन न्यायाधीश द्वारा साक्ष्य का पहले ही मूल्यांकन कर लिया गया है तब तक उचित नहीं होगा जब तक कि उच्च न्यायालय के ध्यान में ऐसा कोई प्रत्यक्ष लक्षण न लाया गया हो जिससे अन्यथा न्याय की घोर न्यायहानि कारित होगी । उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय की उपर्युक्त आधार पर संवीक्षा करने पर हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उच्च न्यायालय ने मौखिक साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके प्रत्यर्थी की दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करके अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है । ...."

12. एक अन्य निर्णय जिसके प्रति भी उच्च न्यायालय द्वारा निर्देश किया गया है और जिसका अवलंब लिया गया है, वह **संजयसिंह रामराव चव्हाण** बनाम **दत्तात्रे गुलाबराव फाल्के और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय है । इस मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मजिस्ट्रेट के आदेश में तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि वह अनुचित या पूर्णतः अयुक्तिसंगत न हो या किसी सुसंगत सामग्री पर विचार न किया गया हो, ऐसा आदेश मात्र इस आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता है कि एक अन्य दृष्टिकोण संभव है । पैरा 14 में निम्न प्रकार अधिकथित किया गया है :–

"14. ..... जब तक कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अनुचित न हो या न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण पूर्णतः अयुक्तिसंगत न हो या किसी सुसंगत सामग्री पर विचार न किया गया हो या अभिलेख की स्पष्ट रूप से गलत व्याख्या की गई हो तब तक पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा मात्र इस कारण उस आदेश को अपास्त करना न्यायोचित नहीं है कि एक अन्य दृष्टिकोण संभव है । पुनरीक्षण न्यायालय किसी अपील न्यायालय के रूप में कार्य करने के लिए अभिप्रेत नहीं है । पुनरीक्षण अधिकारिता का संपूर्ण प्रयोजन दंड न्यायशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार न्याय करने संबंधी न्यायालय की शक्ति की रक्षा करना होता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 से

[1] (2015) 3 एस. सी. सी. 123.

धारा 401 के अधीन न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति की तुलना किसी अपील से नहीं की जा सकती है । जब तक उस न्यायालय के निष्कर्ष के बारे में, जिसके विनिश्चय को संशोधित करने की ईप्सा की जाती है, यह नहीं दर्शाया जाता है कि वह अनुचित या विधि की दृष्टि से अमान्य है या घोर रूप से त्रुटिपूर्ण है या स्पष्टतः अयुक्तिसंगत है या जहां वह विनिश्चय किसी सामग्री पर आधारित नहीं है या जहां कि तात्विक तथ्यों की पूर्णतः अनदेखी की गई है या न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने या सनकपूर्ण रूप से किया गया है तब तक न्यायालय अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उस विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे ।'

13. उपर्युक्त मामले में भी अभियुक्त की दोषसिद्धि लेखबद्ध की गई थी, उच्च न्यायालय ने स्वयं अपना दृष्टिकोण रखते हुए दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त कर दिया । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया था कि उच्च न्यायालय ने अपने दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करके और वह भी किसी विधिक आधार के बिना, अपनी अधिकारिता से परे कार्य किया है ।

14. अब हम ऊपर उल्लिखित मामलों में अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय के आदेश की परीक्षा करते हैं । उच्च न्यायालय ने स्वयं पैरा 40 में दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने के लिए अपने कारण दिए हैं । उसने यह मत व्यक्त किया है कि यद्यपि अभिलेख पर विद्यमान किसी साक्ष्य को स्वीकार करने के संबंध में किसी व्यक्ति की अनुभूति एक-दूसरे से भिन्न होती है किन्तु अभियुक्त उसकी अनुभूति और विचारणा के आधार पर न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह उत्पन्न करने में सफल हुआ है । इस निर्णय के पैरा 40 में जो कुछ कहा गया है उसकी अवेक्षा करना सुसंगत है जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

"40. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, यद्यपि अभिलेख पर विद्यमान किसी साक्ष्य को स्वीकार करने के संबंध में किसी व्यक्ति की अनुभूति एक-दूसरे से भिन्न होती है किन्तु मेरी अनुभूति और विचारणा के आधार पर अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में, विशेष रूप से परिवादी द्वारा यथा-अभिकथित तारीख 25 दिसम्बर, 2005 के अभिकथित संव्यवहार के संबंध में संदेह उत्पन्न करने में सफल हुआ है । अतः,

मेरी राय में, उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय के ऐसे निर्णय में हस्तक्षेप करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है चूंकि यह विषयवस्तु पूर्ण रूप से संहिता की धारा 397 के पैरामीटर तथा उच्चतम न्यायालय के दिशानिर्देशों के अधीन भी आती है, जैसी कि उपर्युक्त विनिश्चयों में अवेक्षा की गई है । अतः, मेरी यह सुविचारित राय है कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय ने मात्र अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा के आधार पर तथा इस आधार पर भी कार्यवाही करके गंभीर त्रुटि कारित की हैं कि अभियुक्त ने चैक के खो जाने, आदि के संबंध में अपनी प्रतिरक्षा साबित नहीं की है । अतः, मैं इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक देता हूं और निम्नलिखित आदेश पारित करता हूं :–

आदेश

पुनरीक्षण याचिका मंजूर की जाती है । परिणामस्वरूप, 2006 के सी.सी. सं. 1362 में तृतीय अपर सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) और जे.एम.एफ.सी., कालबुर्गी द्वारा पारित निर्णय और दंडादेश को, जिसे 2009 की दांडिक अपील सं. 46 में कालबुर्गी के फास्ट ट्रैक न्यायालय-1 द्वारा अभिपुष्ट किया गया है, अपास्त किया जाता है । परिणामस्वरूप, अभियुक्त को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है । यदि अभियुक्त/याची द्वारा जुर्माने की कोई रकम जमा की गई है तो उसे वह रकम लौटाने का आदेश किया जाता है ...।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

15. उच्च न्यायालय ने ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि का आदेश किसी अनुचितता से ग्रस्त है या किसी सामग्री पर आधारित नहीं है या पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अन्य कोई विधिमान्य आधार है । उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करने का कोई विधिमान्य आधार नहीं है कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह उत्पन्न करने में सफल हुआ है । अपीलार्थी ने चैक का जारी किया जाना साबित कर दिया है, जिस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर हैं और चैक प्रस्तुत करने पर चैक "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन सहित लौटा दिया गया था । बैंक के कर्मचारी को एक साक्षी के रूप में पेश किया गया था, जिसने यह साबित कर दिया था कि चैक इस आधार पर नहीं लौटाया

गया था कि उस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर नहीं थे बल्कि वह अपर्याप्त निधियों के कारण लौटाया गया था । हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय का निर्णय एकमात्र इस आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है ।

16. हालांकि उच्च न्यायालय का निर्णय इस आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है कि उच्च न्यायालय ने अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता से परे कार्य किया है फिर भी मामले के गुणागुण के संबंध में अपना समाधान करने के लिए हमने इस बात की परीक्षा की कि अभियुक्त के ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में कोई संदेह था अथवा नहीं ।

17. 1881 के अधिनियम की धारा 139 में धारक के पक्ष में उपधारणा करने का उपबंध है । धारा 139 निम्नलिखित रूप में है :–

> "139. **धारक के पक्ष में उपधारणा** – जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो, यह उपधारणा की जाएगी कि चैक के धारक ने धारा 138 में निर्दिष्ट प्रकृति का चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए प्राप्त किया है ।"

18. इस न्यायालय ने **कुमार एस्काट्र्स** बनाम **शर्मा कार्पेट्स**[1] वाले मामले में परक्राम्य लिखत अधिनियम तथा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों पर विचार किया था । इस न्यायालय ने धारा 139 के प्रतिनिर्देश करते हुए, पैरा 14, 15, 18 और 19 में निम्न प्रकार अधिकथित किया :–

> "14. अधिनियम की धारा 139 में यह उपबंध किया गया है कि जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो, यह उपधारणा की जाएगी कि चैक के धारक ने धारा 138 में निर्दिष्ट प्रकृति का चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए प्राप्त किया है ।
>
> 15. उपधारणाएं ऐसी युक्तियां हैं जिनके प्रयोग द्वारा न्यायालयों को इस बात के होते हुए भी कि कोई साक्ष्य नहीं है या अपर्याप्त साक्ष्य है, किसी मुद्दे के संबंध में निर्णय सुनाने के लिए समर्थ और हकदार बनाया जाता है । साक्ष्य अधिनियम के अधीन सभी उपधारणाएं अधिनियम में उल्लिखित तीन वर्गों में से एक या अन्य वर्ग के अधीन अवश्य आनी चाहिएं, अर्थात्, (1) "उपधारणा कर सकेगा" (खंडनीय), (2) "उपधारणा करेगा" (खंडनीय) और (3) "निश्चायक उपधारणाएं" (अखंडनीय) । "उपधारणा" पद का प्रयोग किसी ऐसे तथ्य के विद्यमान होने के अनुमान, उसकी सकारात्मकता

---

[1] (2009) 2 एस. सी. सी. 513.

या नकारात्मकता को अभिहित करने के लिए किया जाता है जिसे सुविधाजनक रूप से "उपधारित" तथ्य कहा जाता है, जो कि किसी न्यायिक अधिकरण द्वारा किसी तथ्य से किसी संभावित तर्काधार प्रक्रिया द्वारा या तो न्यायिक रूप से अवेक्षा करके या अधिकरण के समाधानप्रद रूप से विधिक साक्ष्य द्वारा स्वीकृत या स्थापित किया जाता है । उपधारणा का शाब्दिक अर्थ "परीक्षा या सबूत के बिना सही मानना" है ।

18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में "साबित" शब्द की परिभाषा को अधिनियम की धारा 118 और धारा 139 के उपबंधों को लागू करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 138 के अधीन किसी विचारण में यह उपधारणा करनी होगी कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत प्रतिफल के लिए की गई थी या लिखी गई थी और जब एक बार परक्राम्य लिखत का निष्पादन या तो साबित कर दिया जाता है या स्वीकार कर लिया जाता है तो वह ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए निष्पादित की गई थी । जैसे ही परिवादी यह साबित करने के भार का निर्वहन कर देता है कि लिखत, अर्थात्, कोई टिप्पण अभियुक्त द्वारा निष्पादित किया गया था तो अधिनियम की धारा 118 और धारा 139 के अधीन उपधारणा संबंधी नियम, साबित करने का भार अभियुक्त पर डालने में उसकी सहायता करते हैं । ये उपधारणाएं तब तक जीवित, विद्यमान और बनी रहेंगी तथा उनका अंत तभी होगा जब अभियुक्त द्वारा इसके प्रतिकूल साबित कर दिया जाता है, अर्थात्, चैक प्रतिफल और किसी ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी नहीं किया गया था । कोई उपधारणा अपने आप में कोई साक्ष्य नहीं होती है बल्कि उस पक्षकार के लिए, जिसके फायदे के लिए वह विद्यमान है, केवल प्रथमदृष्ट्या मामला बनाती है ।

19. अधिनियम की धारा 118 में "जब तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता" वाक्यांश के प्रयोग और अधिनियम की धारा 139 में "जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो" शब्दों के प्रयोग को साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 में दी गई "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" परिभाषाओं के साथ पढ़ने पर यह तुरंत स्पष्ट हो जाता है कि दोनों उपबंधों के अधीन की जाने वाली उपधारणाएं खंडनीय हैं । जब कोई उपधारणा खंडनीय होती है तो उससे केवल यह इंगित होता है कि वह पक्षकार जिस पर उपधारित तथ्य के आधार पर साक्ष्य के साथ आगे बढ़ने का कर्तव्य है और जब उस

पक्षकार ने ऋजुतापूर्वक और युक्तियुक्त रूप से ऐसा साक्ष्य पेश कर दिया है जिससे यह दर्शित होता है कि वास्तविक तथ्य वह नहीं है जो कि उपधारित किया गया है तो उपधारणा का प्रयोजन समाप्त हो जाता है ।"

19. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त उपधारणा का खंडन करने के लिए साक्ष्य पेश कर सकता है किन्तु ऋण की विद्यमानता के संबंध में मात्र प्रत्याख्यान करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा । पैरा 20 में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया था :–

"20. .... अभियुक्त यह साबित करने के लिए कि प्रश्नगत टिप्पण प्रतिफल द्वारा समर्थित नहीं था और ऐसा कोई ऋण या दायित्व नहीं था जिसका उसके द्वारा उन्मोचन किया जाना था, प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश कर सकता है । तथापि, न्यायालय के लिए प्रत्येक मामले में इस बात पर जोर देना आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त को प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश करके प्रतिफल और ऋण की अविद्यमानता को नासाबित करना चाहिए क्योंकि नकारात्मक साक्ष्य की विद्यमानता न तो संभव है और न ही अनुध्यात की जाती है । इसके साथ-साथ, यह स्पष्ट है कि प्रतिफल देने और ऋण की विद्यमानता के प्रत्याख्यान मात्र से प्रकटतः अभियुक्त का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा । जो कुछ संभावित है उसे अभिलेख पर लाया जाना चाहिए जिससे कि साबित करने का भार परिवादी पर अंतरित किया जा सके । अभियुक्त को, उपधारणाओं को नासाबित करने की लिए ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों को अभिलेख पर लाना चाहिए जिन पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय या तो यह विश्वास कर सके कि प्रतिफल और ऋण विद्यमान नहीं था या उनकी अविद्यमानता इतनी संभावित थी कि कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति, मामले की परिस्थितियों के अधीन इस अभिवाक् पर कार्यवाही करेगा कि वे विद्यमान नहीं थे ..... ।"

20. प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय तथा अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि चैक पर अभियुक्त के हस्ताक्षर थे और यह बैंक में प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थी को दिया गया था और धारा 139 के अधीन उपधारणा ठीक ही की गई थी, जिसका खंडन अभियुक्त द्वारा नहीं किया गया था । अभियुक्त ने उपर्युक्त उपधारणा का खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया था । अभियुक्त अपने पक्षकथन का समर्थन करने के लिए साक्षी के कठघरे में भी नहीं आया था । उस सूचना

के उत्तर में, जो कि अपीलार्थी द्वारा दी गई थी, अभियुक्त ने यह प्रतिरक्षा ली कि चैक को अपीलार्थी द्वारा चुराया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उक्त प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया गया था, जिसके संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा भी कोई प्रतिकूल दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है ।

21. एक अन्य निर्णय, जिसकी परीक्षा करने की आवश्यकता है, वह **रंगप्पा** बनाम **श्री मोहन**[1] वाला मामला है । इस मामले में, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1881 के अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा की परीक्षा की । इस न्यायालय ने उपर्युक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अभियुक्त ऐसी कोई संभावित प्रतिरक्षा करने में समर्थ हो जाता है जिससे किसी ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह का सृजन होता है तो वह उपधारणा असफल हो सकती है । पैरा 26 और 27 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया था :–

> "26. इन उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए हम प्रत्यर्थी दावाकर्ता से इस संबंध में सहमत हैं कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन आदिष्ट उपधारणा में वास्तव में विधिक रूप से प्रवर्तनीय किसी ऋण या दायित्व का विद्यमान होना शामिल नहीं है । कृष्ण जनार्धन भट्ट (2008) 4 एस. सी. सी. 54 वाले मामले में की गई अभिकथित मताभिव्यक्तियां उस सीमा तक सही नहीं हो सकती हैं । तथापि, इससे उस मामले में के विनिश्चय की शुद्धता के बारे में किसी प्रकार का कोई संदेह उत्पन्न नहीं होता है चूंकि वह उस मामले में के विनिर्दिष्ट तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर आधारित था । जैसा कि इन उद्धरणों में उल्लेख किया गया है, यह वास्तव में खंडनीय उपधारणा की प्रकृति का है और इसमें अभियुक्त ऐसी प्रतिरक्षा करने के लिए स्वतंत्र है जिसमें विधिक रूप से प्रवर्तनीय किसी ऋण या दायित्व के संबंध में बहस की जा सकती है । तथापि, इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऐसी एक आरंभिक उपधारणा है, जो परिवादी के पक्ष में है ।
>
> 27. अधिनियम की धारा 139 विपरीत भार संबंधी खंड का एक उदाहरण है जो कि परक्राम्य लिखतों की विश्वसनीयता में सुधार लाने के विधायी उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए शामिल किया गया है । जबकि अधिनियम की धारा 138 में चैकों के अनादरण के संबंध में

[1] (2010) 11 एस. सी. सी. 441.

ठोस दांडिक उपचार विनिर्दिष्ट किया गया है किन्तु धारा 139 के अधीन खंडनीय उपधारणा एक ऐसी युक्ति है जिससे कि मुकदमेबाजी के अनुक्रम में असम्यक् विलंब को रोका जा सके । तथापि, यह स्मरणीय है कि धारा 138 द्वारा दंडनीय बनाए गए अपराध को विनियमनकारी अपराध के रूप में भलीभांति वर्णित किया जा सकता है चूंकि किसी चैक का बाउंस हो जाना व्यापक रूप से एक सिविल प्रकार की त्रुटि है जिसका प्रभाव प्रायिक रूप से वाणिज्यिक संव्यवहारों में अंतर्वलित प्राइवेट पक्षकारों तक सीमित रखा जाता है । ऐसी पृष्ठभूमि में, विपरीत भार संबंधी खंडों के अर्थान्वयन और निर्वचन को आनुपातिकता की कसौटी से मार्गदर्शित होना चाहिए और प्रतिवादी-अभियुक्त से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह असम्यक् उच्च मानक या सबूत का निर्वहन करे ।'

22. अभियुक्त द्वारा कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था । चूंकि सूचना के उत्तर में ली गई इस प्रतिरक्षा को कि चैक को चुराया गया था, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अस्वीकार किया गया है इसलिए हमें उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई आधार प्रतीत नहीं होता है कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह का सृजन करने में सफल हुआ है । उच्च न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि धारा 139 के अधीन की गई उपधारणा का स्वयं अभि. सा. 1 के साक्ष्य के आधार पर कैसे खंडन किया जा सकता है ।

23. उपर्युक्त विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने में त्रुटि कारित की है । उच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में, दोषसिद्धि को अपास्त करने के लिए अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने में समर्थ बनाने के लिए किसी पर्याप्त आधार का उल्लेख नहीं किया है ।

24. परिणामस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है, उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और अपील न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट किए गए विचारण न्यायालय के निर्णय का प्रत्यावर्तित किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.